



कविता के  
नये प्रतिमान



राजकमल प्रकाशन

---

दिल्ली ६

पटना ६

# कविता के नये प्रतिमान

---

नामवरसिंह

३६

○ नामवर सिंह



प्रथम संस्करण १९६८



मूल्य रु० १० ००



प्रकाशक

राजवमल प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड दिल्ली ६



गाहारा प्रिंटिंग प्रेम

नं १८ नवान गाहारा दिल्ली २

मरी बह लोया हुई  
परम अनिव्यक्ति अनिवार  
आत्मसम्भवा

अज्ञानन माधव मुक्तिबोध

वो या म



ऊर्ध्वोऽवमारुह्य यदथतत्त्व  
 धी पश्यति श्रान्तिमवेदयन्ती ।  
 अल तदाद्य परिकल्पिताना  
 विवेकसोपानपरम्पराणाम् ॥

चित्र निरालम्बनमेव मय  
 प्रमेयसिद्धौ प्रथमावतारम् ।  
 तन्मागलाभे सति सेतुबन्ध—  
 पुरप्रतिष्ठादि न विस्मयाय ॥  
 तत्मात सत्तामत्र न दूषितानि  
 मतानि तायव तु शोधितानि ।  
 पूवप्रतिष्ठापितयोजनासु  
 मूलप्रतिष्ठाफलमामनन्ति ॥

श्रान्ति का अनुभव न करन वाली विवेचकों की बुद्धि  
 ऊपर ऊपर चढ़न हुए अन्त में जिस अथ-नत्त्व को देखती  
 है उस तक पहुँचान वाली परिकल्पित विवेक के प्रारम्भिक  
 सोपानों की परम्परा का क्या महत्त्व ?

मानता हूँ कि प्रमेय की सिद्धि का प्रथम प्रयास विचित्र  
 और निराधार भी होता है किन्तु उस मान में अग्रसर  
 होने पर उसके ऊपर सेतुग्रा नगरा आदि का निर्माण भी  
 विस्मयकारी नहीं रह जाता ।

इसलिए यहाँ प्राचीन आचार्यों के मतों का खण्डन नहीं  
 बल्कि संगोचन किया गया है । पूव प्रतिष्ठापित सिद्धांतों  
 की योजना में भी मूल की प्रतिष्ठा का फल मिलता है ।

अमिनव भारती





## भूमिका

कविता के नये प्रतिमान आलोचना के नये सङ्घापी प्रयास का अंग है जिसके पीछे नये मूल्यों की खोज और प्रतिष्ठा को तत्पर चलन वाले सधप का एक लम्बा निवर्तन है और जिसमें हर एक का अपना आत्मसधप भी शामिल है। पुष्पक की बात गला अभी सधप का प्रतिफलन है। जिन्हें एक बन-बनाए स्पष्ट प्रतिमान में प्रयोजन है उन्हें ये विचार गायक-यय के मिरदल नगें। लेकिन सधप के बिना जब ये रक्त की गोटा भी मयम्भ नहीं हानी तो कविता के मूल्य क्या मिलेंगे? मूल्य को उमानिए कमाया हुआ सत्य कहा जाता है कि हर एक को मूल्य के लिए खुद कीमत चुकानी पड़ना है। मूल्य हस्तान्तरित नहीं किए जा सकते अधिक-से अधिक उनका पुनः प्रयय हो सकता है और पुनः प्रत्यय से अधिक यय पुष्पक अपना भी नहीं करती।

कविता के नये प्रतिमान नाम में दम्भ की कुछ गंध मत हो मिन स्वयं पुष्पक में किना प्रतिमान के निमाण का दम्भ नहीं है। सत्य का विद्वान है कि जिस तरह बयाकरण भाषा के गान नहीं बनाता उसी तरह आलोचक भी काव्य के मूल्य का निमाण नहीं करता। गणानुगामन के समान ही काव्यानुगामन भी वस्तुतः अनुगामन है गामन नहीं। इस अनुगामन के

आधार है नय का य मृजन म निहित मूल्या का प्रत्यभिमान या पहचान जिसे अभिनवगुप्त ने नाट्य का भी विशेष रूप से अनुम घानात्मक निरूपण कहा है। यहाँ यह जाना हुआ वहाँ तक पहचाना हुआ बन सका है उसका निराय विज्ञ पाठक स्वयं करेंगे।

एक अनुगासन की आवश्यकता न पड़ती यदि कविता की सीधे अनुभव करने में हर पाठक स्वतः प्रयोग समर्थ होता। किंतु विडम्बना यह है कि जो अपने को सामान्य पाठक कहता है वह भी अपने काव्यानुभव में अनजान ही किसी न किसी काय सिद्धांत से अनुगासित होता है। य अनजान काव्य सिद्धांत पर्यवक्षण और निराय में सब समय साधक ही नहीं होत उपादातर तो वे पाठक की दृष्टि को सीमित और निराय को पूरग्रह से दूषित करत प्रतीत होत हैं। विद्वान् बीस वर्षों के काव्य मृजन के सहज प्रवृत्त का जितना हठ प्रतिरोध प्रमाण है। कि दो म सम्प्रति ध्वनि छायावादी पूरग्रह प्रबल हैं जो अभी तक अनजान शीत के कारण अनक पाठक को उनक अनजान ही प्रभावित करत रहत है। एक पुस्तक में एक और उन पूरग्रह के प्रति पाठक को आत्म सजग करने का एक प्रयास है तो दूसरी ओर अपने पूरग्रहों के प्रति भी पर्याप्त आत्म सजगता है कि ह कबल गारम्भिक प्रतिभा (नाम्पोथीसिस) के रूप में स्वीकार किया गया है।

यह तथ्य अनदेखा नहीं जा सकता कि कविता के नये प्रतिमान के क्षेत्र में मुक्तिबोध है। मूल्या के अवलोकन की प्रक्रिया में कभी न कभी प्रायः सबके सामने आदिपद्य का यह प्रश्न उपस्थित होता है कि-कौनसा सांस्कृतिक लोके ? उत्तर में मुक्तिबोध ही क्या दाख करता है उत्तर यदि स्वयं यह पुस्तक नहीं देता तो अलग से कोई उत्तर देना अनावश्यक है। वम मुक्तिबोध की मृत्यु के समय एक सत्य का प्रत्यभिमान बढ़ता को हुआ जो एक बात का सूचक है कि पञ्चान के लिए मृत्युबाध से वम का आघात काफी नहीं। एक पुस्तक का आधार यह धारणा है कि नयी कविता में मुक्तिबोध की स्थिति बड़ी है जो छायावाद में निराशा का था। निराशा के समान ही मुक्तिबोध ने भी अपने युग के सामान्य काव्य मूल्या को प्रतिफलित करने के साथ ही उनकी सीमा को चुनौती देकर उस सजनात्मक विविधता को चरितार्थ किया जिससे समकालीन काव्य का महा मूल्यावन सम्भव हो सका।

मुक्तिबोध की विज्ञापना यह है कि उन्होंने रचना के साथ ही आलोचना के भा मान रखे। रचना प्रक्रिया के निरूपण के साथ ही उन्होंने आलोचना-

प्रक्रिया का भी प्रमाण प्रस्तुत किया। एक साहित्यिक की डायरी नयी कविता का आत्म सघष तथा अय निरुद्ध 'कामायनी' एवं पुनर्विचार आदि इस आलोचना प्रक्रिया के एतिहासिक दस्तावेज हैं। अपनी आलोचनात्मक क्षमता के द्वारा मुक्तिबोध ने प्रमाणित कर दिया कि कोई भी चीज तभी स्पष्ट होता है जब कम से कम एक ईमानदार व्यक्ति मौजूद हो। मूल्यवान् है एक भा ऐसे आलोचक का होना जो किसी भी चीज को तब तक छोड़ा न कह जब तक उस नियम के लिए वह अपना सब कुछ दाग पर लगान को तयार न हो।

कविता के नये प्रतिमान के द्वारा यदि और कुछ नही बल्कि केवल यह बाध न जाग्रत हो सका तो उम्मेद की दृष्टि में यह प्रयाम साधक होगा ।

दिल्ली

नामवर सिंह

६ अगस्त १९६८













## कविता क्या है ?

किसा काव्य कृति या कविता होने न साथ ही नया नौना अभीष्ट है। वन नया' को और कविता न हो यह स्थिति साहित्य में कभी स्वीकार्य नहीं हो सकती। फिर नया कविता या विरोध आन नदपन व आग्रह व कारण नना नहा हो रहा है जितना हम कारण कि जा बाह्यन और साधारणत कविता नहीं लगता उस उसक अतमत कविता कहा जाना है। अतएव नया क्या है ? इस प्रश्न के साथ ही यह प्रश्न भी जीवित प्रश्न है कि कविता क्या है ? और यदि भत्य कहा जाय तो पहल की अपेक्षा अब दूसरा प्रश्न अधिक सम्पूर्ण हो उठा है। डॉ० जगदीश गुप्त का यह स्वरन सवदा सम्योचिन है क्योंकि कविता में अब नया कविता के आग की नयी प्रवृत्तिया का उदय हो चला है जिनके प्रवर्तक नयी कविता को प्रच्छन्न ध्वनीत लगन कहन लग है। ऐसी स्थिति में फवल नवीनता के आधार पर नयी कविता का प्रतिष्ठित करना निश्चय ही कठिन होगा। "सन्निध आग यदि नयी कविता के सम्भ में कविता क्या है ?" प्रश्न कि स उठाना आवश्यक प्रतीत हो रहा है ता हम सगत ही क्या जायगा।

किंतु हम प्रश्न की सार्थकता उत्तर पर निर्भर है। डॉ० जगदीश गुप्त के सामन यह स्पष्ट है कि नया क्या है और कविता क्या है — य दोना प्र न परस्पर-सम्बद्ध और एक ही मिकन के दो पहलू हैं क्योंकि कविता में नवीनता की उत्पत्ति वस्तुन मन्वी कविता निरुतन का आवाजा स हा हानी है। सम्भवत हमीनित उन्ने कहा है कि जो वचन सज्जात्पकता (creativity) तथा मयनोयता (emotivity) से रचित हो उस निमा भी स्तर पर कविता

नही कहा जा सकता। इस कथन से स्पष्ट है कि मजनात्मकता गीता या पर्याय है और सचेतनीयता कविता वा। कि तुल्य विपश्चिन् वंश जय डा० जगदीश गुप्त कविता की परिभाषा प्रस्तुत करते हैं तो तब बग मजना मतवा का सत्य गायब हो जाता है। उनको परिभाषा हम प्रस्तुत है

कविता मज्ज आ तरिक अनुगासन संयुक्त अनुभूतिज य मघन तयात्मक गाय है जिसमें सत् अनुभूति उत्पन्न करने का यथष्ट क्षमता निहित रहता है।  
(नयी कविता ५६ १९६ १)

ध्यान देने की बात है कि यह परिभाषा नयी कविता के सम्बन्ध में प्रस्तुत की गई है और परिभाषाकार नयी कविता के एक प्रवक्ता ही न। बल्कि स्वयं नये काव्य भी है। अपना समझ में उठाने परम्परा प्राप्त परिभाषाओं को अपर्याप्त समझकर ही नये मिर में कविता को परिभाषित करने का प्रयास किया है कि तुल्य सम ऐसी कौन सा नये बात है जो किसी पूर्ववर्ती परिभाषा में सुनभ नहीं है? क्या किसी छायावाद को इस परिभाषा से विरोध हो सकता है? यदि नयी कविता यही है तो यही क्या जायगा कि छायावाद के आग चसन अपनी ओर से कुछ भी नया नहीं जोता। यगता है प्राचीन चिंतकों के साथ अपनी बात को जोतने की घृष्टता से अभिभूत डा जगदीश गुप्त अपनी काव्य परिभाषा में वह तत्त्व भूत गए जिस नया कविता न हिंदी काव्य परम्परा में जोड़ा है। इसीलिए अनुभूति ता उह याद रहे गइ नकिन मृजनात्मकता भूत गइ। दूसरे गाय में उनमें छायावाद तो अवगिष्ट रहे गया नकिन नयी कविता जड़ न जमा पाइ। गायद परम्परा से जुन की महत्वाकांक्षा की यही परिगति होती है और ऊपर ऊपर से नया भाव बोध छोड़े रहने वाले जय कविता क्या है जसा बुनियात सवा न उठाते हैं तो अपने उत्तर में अनजान ही पुरानी बात दोहराते पाए जाते हैं।

ऐसी ही प्रमगनियाँ ही नक्षमीका त बर्मा जस गाय को यह कहने का अवसर देता है कि आज नया कविता के आचार्यों और कवियों द्वारा बार बार एक वस्त्र जारी करने की कागिनी की जाती है—और वह यह है कि नयी कविता की अपा अछा कविता और नयी कविता के प्रतिमान की अपा कविता के प्रतिमान की बात उठाई जाए। पहली बात अचात् नयी कविता यनाम अछी कविता के प्रवक्ता गाय अपनी प्रतिष्ठा की उपाधि को परम्परा से सम्बद्ध करके अपने सम्पूर्ण प्रयागगीन उन्मिष का प्रतिष्ठा देना जाता है।  
(नय प्रतिमान पुराने निषय पृ० २६६)

दस्तावेज चार्ज कि नय कविता द्वारा परम्परा में प्रतिष्ठित गीत की आकांक्षा पूरी। मकी है या नही? आनम्बिक न। है कि जिस समय डा० जगदीश गुप्त ने कविता का है जमा आचारभूत प्र न उठाना गाययन समझा

उसी समय डा० नेग्रो ने कहा कि साय मरान म था मण । तथा क्या है और कविता क्या है—इन प्रश्नों के दृढ़ तथा दृढ को एक बार समाप्त करत हुए उन्होंने स्पष्ट गाना म कहा कि कविता क मंदभ म नई-पुरानी की जगह अच्छी पुरी या दमम ना आग कविता प्रकविता का भेद मुझ अधिन नार्थक प्रतीत होता है । इसका अभिप्राय यह नहा है कि मिहारी और पत या पनान और गिरिजाकुमार या कविता क भेद का प्रताति मुझ नहीं है—भेद तो स्पष्ट न है कथ्य का भी और कथन का भविष्यता का भी किन्तु यह भेद भाव कवित्व गुण का निरूपण नहा करना—यह स्वल्प-वर्णन म महायक जाता है मूल्यांकन में नहीं । अनेक का नई रूप विवृति का अधिक मटीक जान है—कवल दमा एक सध्य क आधार पर वे रतनाकर त अधिक समय कवि नहीं बन जात । प्रश्न है रूप का सूक्ष्म गहन अनुभूति और उसकी अधिकाधिक पूर्ण अभिव्यक्ति का । प्रकार क भेद का आत्मा का भेद मान लेन स ही—या कान का हा मौल्य मान लेन स आज का मूल्य-बाध इतना-अधिक और एकागा तथा अपनी एकागिता म तना दुरागती हो गया है कि विवृति और प्रवृति का भेद करना उमक लिए कठिन हो रहा है ।

(आलोचक की आस्था पृ ११)

अपनी समझ म डा० नेग्रो ने एक दृढ को एकत्र नकार कर कवल कविता प्रकविता भेद एक प्रश्न की हा मायक माना किन्तु वे अपनी तक प्रश्रिया में सम दून में बच नहा पाए । यदि नय-पुरान का भेद निरपेक्ष है तो बिनाग और पत या पनान और गिरिजाकुमार म भेद करने की आवश्यकता ही क्या है ? या न उह स्वल्प वर्णन के लिए मनायक प्रतात होना है कवित्व गुण का निरूपण करने के लिए नहा । सवाल यह है कि स्वल्प वर्णन कवित्व-गुण का निरूपण करने के लिए मनायक है या नहा ? यदि नहीं तो निरूपण के लिए स्वल्प वर्णन अनावश्यक है । किन्तु उस स्थिति म निरूपण का कथना तथा मूक्तता का प्रश्न उठ खडा हाया । क्या स्वल्प-वर्णन के बिना मूल्य निरूपण का वांछ मान्यता रह जाता है ? वर्णन के बिना निरूपण या ता नही है या फिर कोश फनवा । यों नहीं एक अभिव्यक्ति दूसरी अवसर की जम दता है । आग ज्या हा डा० नेग्रो ने विवृति का पान और रूप का सूक्ष्म-गहन अनुभूति का दून सहा करत हुए रतनाकर का अर्थ स स्पष्ट कवि बनान प्रतात जान हैं ता स्पष्ट ने जाता है कि उह अर्थ का रूप विवृति का क अधिक मटीक पान का भा मटीक पान नहा है और अर्थात् रतनाकर के अनुभूतियों का बाध भा मण्य हो है । क्या रूप का सूक्ष्म विवृति सूक्ष्म अनुभूति के बिना सम्भव है ? अर्थ को नई रूप विवृति का अधिक मान पान बिना नई अनुभूति के ही हुआ है अथवा व नई रूप विवृति किसी पाठक

नई अनुभूति नहीं जगाती । यही द्रुत अनुभूति बनाम अभिक्ति में भी प्रगट है । और इन सबका आधार वह प्राचीन द्रुतवा । दगन है ता आत्मा और गरीर (जिस गरीर न कहकर डा नगेद्र प्रसार कृत ) व भा पर रखा है । प्रोफेसर रायन न जिस मीन म बठा भूत (गोस्ट इन मीन) कहा है उससे इस आधुनिक युग में भी यदि कोई बाधित नो तो रायन बिलन म इस प्रकार की असंगतियाँ उत्पन्न होंगी ।

अपनी इस धारणा का सद्धार्तिक आधार इन ४ विषयों में प्रतिपादित होर म डा नगद्वय कावता क्या है गीपक स्वन न निव्य न ना विवा । य मयाग मात्र नही है कि डा नगद्वय को भा कविता न परिभाषा करने की आवश्यकता उमा समय महसूस हुई जब डा जगतीग गुप्त का कविता रचिता सम्बन्धी विचार महत्त्वपूर्ण रहा । परिभाषा दत्त समय जगतीग न का उत्साहपूर्ण सन का जोरम नही उठाया बकिन नगद्वय नया उद्घेय कविता नक्षण कस करतात । उहान तुनमागम की एक छद्मावा की उद्घेय बनाया और इस तरह तुनमीगस व आधार पर अपना कविता परिभाषा बनाकर उहान पहन हा प्रकाश कर दिया कि वह किस युग क विषय पर्यायी है । उद्घेय मरक्षित नयग प्रतिष्ठित—फिर भी नयी कविता बाव यन्ति—मम कुछ सम्मान लगाए तो ये अनिच्छित आगावाणी ही कह जाएंग । प्रसंगान् कवन यन्ति—नयनीय है कि छायावाद व उद्घेय व समय कविता क्या है । तबपर एक निव्य न आचार्य रामचन्द्र गुप्त न भा निमा था जो अपने अतिम रूप में अनन्तर परिमलना एवं मगीधना का परिणाम है ।

नई कविता का परम्परा से जोड़ने तथा परम्परा में समेटने व इन प्रयागों में आकस्मिक नहीं नि डा जगतीग गुप्त और न नगद्वय न कविता व एक ही मून तत्त्व का सत्कार दिया और वह तत्त्व है अनुभूति जिस का प चर्चा में प्रचलित करने का नय छायावाद को है । इस प्रकार डा जगतीग गुप्त परम्परा व नाम पर छायावाद से नयी कविता को जानना चाहिये है और डा नगद्वय उम छायावाद में समेटना चाहता है फिर दिवा न क्या ? मम सीधे जान का देयकर यन्ति न उद्घेयाना त वर्मा यन्ति कृत न तो क्या गान व न है कि नया कविता और छायावाद व बीच का अग्रचनन मन में समझीना प्रयोगवाद व रूप में नया था वह सबका सब शब्द उदकर था पडा है ।

(नय प्रतिमान पुरान निरूप पृ २६२)

इस स्पष्ट है कि छायावाद का व्यन्त्यकार आज भी जिन प्रयत्न है । इन मस्कारों व रहत नया कविता का सृजित का बाधक नहीं । जब तब नया कविता इस मस्कार का तादृक रूप न लिए मम जगह नहीं बनाता अथवा स्वयं वह मस्कार ही रूप में अथवा सीमा तादृक नया कविता

का अनुभूति करने का प्रयास नहीं करता। तब तक नया कविता बौद्धिक रूप में स्वीकृत होकर भावात्म्य द्वारा कवि के स्तर पर रहित रहता है। वह 'निहास' में एक नम्र मात्र है। प्रश्न जैसा कि डा० त्रयीगुप्त समझते हैं 'महानुभूति का नया' क्या कि नए अनुभूति अधिक-से अधिक महिष्णुता का जन्म देता है और महिष्णुता महानुभूति का। जन्मा जाय ना माहित्य क' निहास में इस प्रकार का नए अनुभूति विना भाव नई प्रवृत्ति को अपने आप सुगम हो जाता है। उनके लिए किसी प्रकार के अनुभूति विनय या प्रतिरोध का आवश्यकता नहीं होती। प्रश्न का 'मन्त्र' का है जो अच्छा होता है जो अनय का 'मन्त्र' में मन्त्रुति के निरुद्ध और विकसन का प्रयास है।

कविता तब होती है जब नया कविता के कुछ तत्त्वों को समझते हुए अपने परस्पर प्राप्त काव्य-सम्कार तथा उस पर निर्मित प्रतिमान का विकसित करने का दावा किया जाता है। इसी तत्व का एक उदाहरण है डा० नाट्य का 'रस-सिद्धान्त' जिसमें नयी कविता के मन्त्र में पूरणा प्रदान करने के लिए 'हृदि पूरक' रूप में 'रस' नाम की पुस्तक भी दी गई है। यन्त्र सिद्धान्त कितना विनयित 'मन्त्र' पेशा 'हृदि' ता इस करने में हाथ चल जाता है। अमरीका और इंग्लैंड में नये कविता के जिस प्रकार स्वच्छन्दतावादी रा उग्र विरोध किया है उसी प्रकार भारतीय भाषाभाषा में भी (जिसे मराठी प्रगता धारि में) स्वच्छन्दतावादी के साथ-साथ उससे समानधर्मी रसवाद का भी योजनावद्ध विरोध किया जा रहा है। (रस सिद्धान्त, पृ० २४५) स्पष्ट है कि यन्त्र विकसित 'मन्त्र' स्वच्छन्दतावादी की ही समानधर्मी है। इस लिए यन्त्र भी डा० नाट्य 'मन्त्र' का 'रस' तत्त्व के रूप में अनुभूति का चर्चा करता है तो उनके उद्घोष में निहित छायावादी उच्छवास सन्तुष्ट पर आ जाता है। उदाहरण के लिए 'हृदि' का उच्छवास यदि रस या रस का निकटवर्ती अनुभव है तो वागी का उच्छवास बनता या अन्तर्गत का ही समानाधिकार 'मन्त्र' समूह है। (आलोचना के आस्था पृ० १२) और फिर भाव का रूप उच्छवाससमय होता है तब उसमें गमित होकर 'मन्त्र' में गति-नय अनायास 'मन्त्र' ही जाती है। (वही पृ० १५) 'मन्त्र' उच्छवास के बाद भी यदि डा० नाट्य के 'मन्त्र' के छायावादी 'मन्त्र' में मन्त्र ही तो अनायास के महार वामवय के spontaneous overflow को स्मरता कर उना काफा योग।

यन्त्र यन्त्र उच्छवास अपनी प्रवृत्ति के कारण नया कविता के मन्त्र भाव वाधा और वस्तु निम्ना को अपने चित्र में समझने का दावा कर सकता है किन्तु इस प्रयास का सम्मान का स्वर इसमें अन्तर्गत होगा। सममानधिकार काव्य में एक और मानव रस और दूसरे दूसरे और मन्त्रा महानुभूति तथा भाव-वायु व्यापक मन्त्रा के ही विकास रूप हैं। मन्त्रमानव के स्थान पर 'मन्त्र'

मानव आत्मबल बना और रस चक्र में हमारा तथा मयूरी व स्थान पर गीत और मुँगे तथा मत्तगय दा व स्थान पर आनसी गडे फमन नम । (आलोचक की आस्था पृ० ६) हम उक्ति व वाद भी यन्त्रि डा नग्न यन्त्र कह कि मत रस व स्वस्व विकास व साथ साथ रसात्मक बाध की व्याख्या नही करना— यह धारणा और तब दुराग्र व ही छोनक है । (वही) तो गहन की आनश्यकता नही रह जाती कि दुराग्रह विसका है । यदि नव आनम्प्रता व नाम पर कोए मुँगे और गडे फसाना हा रस चक्र का विकास है ना हरिषीध का रस-बल व रस सागर है ।

रस सग्रह की हम दृष्टि में यन्त्रि समस्त नयी कविता में सबसे रामाष्टिन समझ जान घाने कवि गिरिजाकुमार मातुर ही नयी कविता व ध्यानम कवि प्रतीत हा तो आश्चर्य नही होना चाहिए । यही नहा विषय की विम्व योजना में भावना और कल्पना का अपूर्व मणि काचन योग प्रस्तुत करने वाली य पक्तियाँ भी उस रस दृष्टि का विकास सूचित करता है —

मन का मुग भाग रना

मुधि की अहरिन यह

धूना व वान लिए फिरती है ।

अन प्रकार यह विकसित रस दृष्टि जिस गति से गिरिजाकुमार मातुर व मुधिया व चन्दन घन से होकर श्याममुन्दर घोष की मुधि की अहरिन का अनुगमन कर रही है नीरज का मुधिया का कारवाँ थोड़ी हा दूर रना जाता है । कौन कहगा कि ये मुधिया कालिदास की तच्छेतमा स्मरति नूनमबोधपूर्व भावस्थिराणि जननात्तर सौहृदानि नही हैं ?

हमीलिए हम रस विकास से नयी कविता के कवि गिरिजाकुमार मातुर भा पूरी तरह आनवस्त नही हो सके क्योंकि वे कबल मुधिया व चन्दन घन व हा कवि नही है और न रहना ही चाहत है । यन्त्रि तक कि वे डा नग्न व रस सिद्धांत को रसवाद की सना दन का अपक्षा नव भावाभिव्यजनावाक कहता अधिक उचित समझन है । (काव्य विम्व रस दृष्टि और आधुनिक संवेदना साप्ताहिक हिन्दुस्तान २७ अगस्त १९६७) । अपक्षित व्याख्या व बिना हम नव भावाभिव्यजनावाद सना का रस सिद्धांत व लिए जमा भी रिक्त समझा जाय कि तु गिरिजाकुमार मातुर व आन व विवचन में स्पष्ट है कि यन्त्रि नव भावाभिव्यजनावाक नयी कविता का समग्रन व्याख्या करने में असमर्थ है क्योंकि हम रस दृष्टि व द्वारा नयी कविता व काव्य विम्व को समझ पाना असम्भव है । गिरिजाकुमार मातुर व विवचन में स्पष्ट है कि विम्व का काव्य व माध्यम मानने का डा नग्न नयी कविता व विम्व का स्वरूप नही समझन क्योंकि कलात्मक अनुभूति की समस्त प्रक्रिया ही विम्वमयी

होता है। उस प्रकार विश्वकनात्मक अनुभूति का प्रमाण है केवल प्रभाव। माध्यम नहीं। इस प्रकार डा० नरेंद्र का विज्ञानिक रचनात्मक दृष्टिकोण प्रिय कवि द्वारा भी समझा सिद्ध होता है जिसका अर्थ है उद्यम द्वारा रचना का सृजन। कविता न होगी कि नका मूल कारण वही द्वैत भाव है।

जो कवन अपना अनुभूति क्षमता के विध्यानिर्माण बन पर नया कविता की समझ बन तथा समझकर मूल निगम का भाव व्यक्त है ध्यानार में नया अनुभूति का सामा प्रकृत भाव के साथ या यह उद्यम न सफल होता है कि नया समाधान में नया रचना में सामा अनुभूतियों का संग्रह बना प्रामाण्य है। मान्यमान के बाद प्रजन का साधक जिस तरह व्युत्पन्न के सम्मुख स्थायी हो गया था नया प्रकार नया कविता के समग्र पृष्ठाना अनुभूतियों के निर्मित मनुष्यता का विफलता निर्वचन है। नैदानिक स्तर पर हम सहजता को चाहते हैं कि नया रचना एवं युक्तियों में सुनिश्चित किया जाय किन्तु एक छोटी-सी नया कविता न मिटाते के उद्देश्य के द्वारा के लिए आनंदित या ताता है। न्यायारण के लिए हम मिटाने में अन्तर्गत का मोनोमैत्री कविता का निम्ननिम्न विवरण —

हम निहारते हैं

नीचे के पाछे

होने रहा है मदन।

स्व-नृपा भा

(और नीचे के पाछे)

है जिताविषा।

मध्य की यह कविता नयी कविता है और सुन्दर भा। नया आनन्द का स्वरूप क्या है ? सुन्दर विश्व ? नौ नव पत्तियों द्वारा प्रभाता की कल्पना में नवबुद्ध विश्व निर्वचन ही अत्यन्त आकर्षक और सज्जव है। नीचे के पाछे अन्तः प्राण रसा के लिए जन में विरक्तता है मान-मद्यता का चित्र एकात्म भाव के सामने भाव दृष्टता है—चमत्कार है मद्यता का तर्कित आकृति माना जिताविषा नया नवचित उच्चारण के साथ नया मूल भाव होता है। अन्तर्गत नया मध्यम सज्जव चित्र प्रस्तुत कर देता निर्वचन या मध्यम के आकार का भाव है। परन्तु मैं पूछता हूँ कि क्या यह नया चित्र या नया कविता का अन्तिम सिद्धि है ? क्या प्रस्तुत नया चित्र का समन्वित करने वाला मध्यम नया कवन मानव चेतना का नवगत स्तर में प्राप्त है इसका उत्तर मिद्धि नहीं है ? विश्व निर्वचन या कविता का सिद्धि है पर नया विश्व का आवल कवन याता तत्त्व तो मानव चेतना का स्तर ही है और उन्मा का नाम रक्त है। /

(रत्न सिद्धांत, पृ० १६५७)



एक प्रमाता की हम रस मापक व्याख्या व वात हम रचना पर मध्य रचना कार की निम्नलिखित टिप्पणी द्रष्टव्य है

जीवन स्वप्ना और आनन्द का एक रमान और मिश्रण भगवत् । हम चाहते तो उम रूप से ही उनमें रह सकते हैं पर रूप का यह आनन्द न वास्तव में जीवन व प्रति हमारे आनन्द का ही प्रतिरिम्ब है । जीवन — माधे न दायर हम एक यात्रा में सदैव हैं तो हम उन रूप में ही प्रकट जाते हैं जिनके द्वारा जीवन अभिव्यक्ति पाता है । रात्रि की टहनी में पानी में सोने मछनी पर एक छाटी सी कविता में दर्शनी बना गया है ।

(आत्मनन्द पृ ४५)

अन्य की हम टिप्पणी का शीर्षक है प्रतीक और सदा वपण जबकि आनन्द का दृष्टि में पश्य मिश्र उभरता है फिर प्रमाता है उस रमिता नन्दन वातावरण । इस प्रकार यह रूपावपण जीवनावपण का प्रतिरिम्ब नहीं बल्कि एका विम्ब है जिस आगे चलकर हम सिद्ध करती हैं । विवेचन से मिश्र और अनुभूति का द्वन्द्व ही नहीं बल्कि उनका माधन माध्य सम्बन्ध ही स्पष्ट है । इस स्थिति में प्रमाता व सम्पूर्ण यथार्थ का स्पष्ट न होना स्वाभाविक ही है जिस छिपाने व निष्कूल रस्यदर्शी व समान उस अस्पष्ट मन्त्रन का नाम लिया गया है जो मानव चेतना को ही वर्णन रूप में प्राप्त है । गोया जिजीविषा उस मान मछनी में नहीं है । भाषा रात्रि की स्थिति यह कि 'नींदनी' में मछनी विरक्ती हुई 'सिखा' पत्नी है और नय नयन का प्रतिरिक्त उमाह जिजीविषा 'नय' में मछनी की तरंगयित आह्वान व अनुरूप वनयित उच्चारण तक मग्न रहती है । क्या यह असंगति रूप और भाव की अनग्न प्रलम्ब करके दखन वाली द्वन्द्व दृष्टि का परिणाम नहीं ? अनन्तान में यह कविता तथा कवि का टिप्पणी जस प्रमाता की वाच्य दृष्टि की सीमा पर ही सटीक टिप्पणी है जो अपने सिद्धांत व वाच्य में फसकर रह जाती है । इस निष्पत्ति व दायर में क्या नया कविता का नयन भा सोने मछनी की माना होगा ?

स्पष्ट है कि नया रविता व सन्ध में कविता व नय वन तत्त्व व रूप में वन अनुभूति का नाम चला ही काफी नहीं है—नाकाफी ही नहीं बल्कि अमर है । अनय का प्रसाद व अत्यंत निवृत्त मानत रूप भी । विजयदर नागदण्ड साधन न होना कविता व दाताम उद्वेग दवर दृष्ट कर निष्पत्ति व अनुभूति में समान होने पर भी उसका मध्य भिन्न हो गया और उस में साथ कविता का मूल घम क्या है हमारी परिभाषा में । अनय भी प्रसाद का ही तरंग अनुभूति को तथ्य और माय को जानने वाला की मानन है । नयन यह ताव व रूप ग्रहण की चपटा नहीं है—रूप व भाव ग्रहण की

चला है दूसरे गान में तब्य का सहमा जब मैं आवाजित हो जाना है । गान हुए का पचाना हमारा गाना है । तब्य यत् कि छायावाद का रचना की प्रक्रिया जहाँ भावरस गान की आत्मा है—हो नया कविता का रचना प्रक्रिया बाहर से भावरस का आरुह । एक म रूप पर भाव का आगमन है तो दूसरी म रूप का भाव म रूपान्तरण है । य विपरान प्रक्रियाए अनुभूति प्रार विचार के सम्बन्ध में भा दृष्टिगत हो जाती हैं । जमा कि माही न भाग क्या है हम प्रकार कामावना में जो अनुभूति दान में परिवर्तित हो जाता है उन प्रत्यक्ष फिर दान से अनुभूति में परिवर्तित बात है । कविता-सम्बन्ध में भारी धारणाओं में हममें गहन परिवर्तन हो जाना है—विद्यपत् अनुभूति का नावतानता की त्वर । यह नावतानता अपना अनुभूति के प्रति कृतिकार की तटस्थता अथवा निर्व्यक्तिवता में उत्पन्न होता है—कमलिए नहीं कि हमारे वाच के माय मय या आम्ब्या चित्र नन सब समान हैं बल्कि हम निज कि जिम चिरस्मन तत्र के दवाध में हम रह रह हैं वत् तय समान है । कवि और पाठक के बीच की जानन वाली कभी मास्त्रा नहीं यथाय है । स्पष्ट है कि प्रसाद और अन्य का यह अन्तर छायावाद और नया कविता का अन्तर है और पूजावत् नम से परस्पर सम्बद्ध होन हुए भी य दा भिन्न नाव्य मिद्वान्त है ।

यथा कारण है कि नया कविता छायावाद के समान ही अनुभूति पर बल दन ग भी भावा का गाननता के प्रति उत्तना आश्वस्य नहीं है । इसीलिए नय कवि अनुभूति से अधिक अनुभूतियों के परिवर्तित मय पर विक्षेप बन दन है । स्पष्ट उनका वन रागात्मकता से अधिक रागात्मक सम्बन्ध पर है । हम धारणा की पुष्टि दूसरा मय के भूमिका में अन्य के इस कथन से भा गानी है यह क्या जा मकता है कि हमारे मूल राग विराग नहीं बल— प्रम अत्र भी प्रम है और घणा अब भा घणा यह साधारणतया स्वीकार किया जा मकता है । पर यह भा गान में रखना होगा कि राग वही रान पर भी रागात्मक सम्बन्धों का प्रणालिया बल ग है और कवि का क्षेत्र रागात्मक सम्बन्धों का क्षेत्र जाने के कारण हम परिवर्तन का कवि कय पर बहुत गहरा प्रम पण है । जम-जस बाह्य वास्तविकता बदलता है—वम वम हमारे गम रागात्मक सम्बन्ध जोन की प्रणालिया भा बदलता है—और अगर नहीं बदलती तो उस बाह्य वास्तविकता में हमारा सम्बन्ध टूट जाता है । कहना न गा कि जो आवाजक हम पश्चितन को नहा गमम पा रह हैं व उस वास्तविकता में टूट गा है जो आन की वास्तविकता है । उससे रागात्मक सम्बन्ध जोन में अमय व उस बदल बाह्य वास्तविकता मानत है जब कि

हम उमसे बता सबध स्थापित करके उसे आ ठीक मत्त बना लत है । और उस विषय से साधारणीकरण की नयी समस्याएँ आरम्भ होती हैं ।

स्पष्ट है कि छायावादी सत्कारा में वे जो आलोचक अनुभूति को स्थायी भाव का पयाग समझते हैं वे वही हुई परिस्थिति में भी कवि से उभर उन स्थायी भावों के अनुरूप अधिक से अधिक नय वस्तुविधान और स्थापित करने का प्रयत्न करते हैं । उनका स्थान है कि नय वस्तुविधान के बावजूद स्थायी भावों की सावधानीनता के कारण का प्रयत्न भावों के साधारणीकरण में कोई कठिनाई न होगा । अपना हम धारणा के अनुरूप ही वे नया कविता के नये विधा में चिरपरिचित स्थायीभाव के न का प्रयास भी करते हैं और जितना जितना पाया के उग पर प्राय वे अपना अभीष्ट वा भी जात है क्योंकि वही सब धृष्टि तो खोजने की समस्या भी नहीं है । किंतु कभी कभी नय विधा में चिरपरिचित स्थायी भाव नहीं भी मिलत तब वे अपने का प्रसिद्धांत को दोष देने की जगह नयी कविता को ही दोषी मान बैठते हैं । वे यह भूल जाते हैं कि कवि के पास निरूपित कुछ गिन चुने स्थायी या सचारी भावों को उदाहरण करना नहीं बल्कि नयी वास्तविकता से उत्पन्न होने वाले वृत्तियों को उजागर करना है । हमी दृष्टि से अपने न रागात्मक सम्बन्धों के क्षेत्र की कवि के क्षेत्र कहा है । नय कवि की समस्या इस रूप की है भाव में आन्तरिक करने की है प्राप्त भावों के रूप देने की नहीं ।

छायावाद के विपरीत नयी कविता में जिस प्रकार रूप भाव प्रकट करता है उच्च मत्त में जाता है और अतः अनुभूति निर्व्यक्ति हो जाती है उसमें स्वयं कविता की संरचना में भी गहरा परिवर्तन आ जाता है । इस प्रकार को स्पष्ट करते हुए श्री विजयदेव नारायण माही ने कहा है कि छायावादी कलाकृति मूलतः एक विस्फोट करता हुआ बना रहा है—जैसे वीथी के धूलकर धारा और जल में तिनका जलना हुआ विखर रहा हो । तीसरे दशक की कलाकृति उस विस्फोट का तरह नया बल्कि एक सहर की तरह निर्मित करता है—जिस प्रमाण में महादेवा से उबर बचने तक के गीत निर्मित होना हैं । नयी कविता उस तरह के रूप को एक स्टुक्कर में बदल देती है ? जग हीरे का क्रिस्टल हो । (सधमानव के बहाने हिंदी कविता पर एक बहस) ।

गीत नयी कविता क्रिस्टल या स्पष्टिक की सधन संरचना के समान है हमका प्रमाण यह है कि आलोचना में उद्धरण का सुविधा के लिए हमका एक अंग चुनना कविता के साथ अदाय हो जाना है और जब भी ऐसा किया जाना है तो कविता के अस्तित्व की कामत पर—ममय अर्थ का कीमत पर । हमलिय जब हमसे तारमूल्य के नये सम्भरण में अपना वस्तु के पुनः के अर्थवान गान का यह न कवि आन की चरम उत्तरी प्रमाणित

करत हैं तो उनकी दृष्टि में शब्द की अथर्वत्ता में स्फटिक की संरचना के समान ही ध्वनि से छंद आदि के साथ ही गारे सामाजिक सन्दर्भ युक्त सम्पृक्ति और कृतिकार के सामाजिक उत्तरदायित्व की भी पूर्ण घनीभूत है। इसलिए नया कविता अभिव्यक्ति नहीं बल्कि निर्मिति मानी जाती है। किंतु डॉ० नगेन्द्र जब कहते हैं कि निर्मिति का सिद्धांत अभिव्यक्ति से भूत भिन्न नहीं है भेद केवल बलाबल का है। अभिव्यक्ति में वस्तु-तत्त्व माध्यम है और आत्म तत्त्व प्रधान जब कि निर्मिति में आत्म-तत्त्व प्रकटन रहता है और वस्तु तत्त्व उभरकर सामने आ जाता है। (आलाचक्र की आस्था, पृ० ३) तो वे अपनी समझ का बुनियादी भ्रम प्रकट करत हैं। काव्य में अभिव्यक्ति सिद्धांत और निर्मिति सिद्धांत में भेद केवल बलाबल का नहीं है। बलाबल का भेद कहा होगा जहाँ का संरचना साध्य साधन के द्वैतवादी सिद्धांत पर आधारित हो। अभिव्यक्ति सिद्धांत में इस द्वैत की सम्भावना हो सकती है किंतु निर्मिति सिद्धांत गुरु से ही इस द्वैत का निषेध करता है। जब काव्य कृति को निर्मिति कहा जाता है तो उसका स्पष्ट अर्थ है कि उसमें वस्तु तत्त्व अथवा आत्म-तत्त्व में से कोई भी माध्यम मात्र नहीं है। स्फटिक की संरचना पर दृष्टि डालने में यह तथ्य अच्छी तरह स्पष्ट हो सकता है। स्फटिक संरचना मर्म की विमान के नवानतम गोघा का तो यहाँ तक कहना है कि स्फटिक में सब कुछ संरचना ही है तब उसी कोई चीज नहीं क्योंकि चरम विश्लेषण में अन्ततः कुछ भी अलग से प्राप्त नहीं होता। इसलिए किसी काव्य कृति में अनायास ही रूप वस्तु नाम और उद्देश्य को एक के बाद एक पा जाने के अभ्यस्त आलाचक्रों की यदि नयी कविता लोग का चना मालूम हो अथवा केवल कुछ नये विम्वारों का पुनः प्रतीत हो तो आश्चर्य नहीं होना चाहिए।

सम्भवतः इसी स्थिति को देखते हुए श्री विजयदेव नारायण साहो ने गमशर की काव्यानुभूति की बनावट के विश्लेषण के प्रसंग में कहा है कि नयी कविता की बहुतायत में यह भावना अनेक रही है कि न सिर्फ कविता का ऊपरी कलवर उल्लास है या नये प्रतीकों या विम्वारों या दावली की तलाश हुई है बल्कि गहरे स्तर पर काव्यानुभूति की बनावट में ही परिवर्तन आ गया है। लेकिन यह सब उस पर बल कम दिया गया है। इस विषय में स्पष्ट है कि नयी कविता की इस बनावट या संरचना को ध्यान में रख बिना आने कविता की कोई भी परिभाषा अधूरी रहणी। इस संरचना का उपल्लावही कर सकता है जो इसका अभिमान को नयी कविता के स्वरूप वर्णन में सहायक मात्र मानता है। किंतु उदाहरणों से स्पष्ट हो चुका है कि इस आलोचक नयी कविता के स्वरूप वर्णन में भी अक्षम है। वे साबित करते हैं कि वह पत और गिरिजाकुमार माधुर अथवा रत्नाकर और अनेक के कविता के भेद की प्रतीति

है किन्तु यावत्कारिण समीक्षा व स्तर पर उनकी प्रतीति का कर्तव्य गुप्त जाना है। अपनी इस अक्षमता व बाउजूस व चाह तो अपनी तुल्य व निम्न काव्य की गाम्भीर्य परिरभापाण गदत घुनत रह सकते हैं और यथारुचि उमर आघार पर नया कविता पर मूख निणय भी द सकते हैं किन्तु नये प्रकार का नया प्रमाण अतन निरर्थक होगा। संश्लिष्ट यति नयी कविता की कविता व नये म जीवन परखना है तो वाचनभूति की नये बदला हुई बनावट का ध्यान में रखा हो कविता की परिरभापा करनी पड़ेगी। नयी कविता की जीवन व निम्न कविता का प्रश्न उठाना गलत नहीं है गलत है कविता सम्बन्धी बुनियादी सवाल की ओर म किमी पुरान मिद्वान का सन्तारा चना। और नि वय। ऐसी चुनौती का जवाब श्री लक्ष्मीकांत वमा की तरफ नयी कविता व प्रतिमान बनाकर नहीं दिया जा सकता बल्कि जमा कि राही व कहा है समूचा नया कविता की ठीक ठीक देखन व लिए नया कविता व प्रतिमान की जन्मत नहीं है बल्कि कविता व नये प्रतिमान की उत्तरत है।



नयी कविता की आलोचना में प्रायः पुराने प्रतिमान बनाए जाते हैं। यदि हमकी जाँच की जाय तो साफ़ मान्य होना कि जिह्वा पुराने प्रतिमान के तहत है वे वस्तुतः पुराने संस्कार हैं। इसलिए नये प्रतिमान का चर्चा करने से पहले इन संस्कारों का विश्लेषण करना बहुत जरूरी है। जब तक नये संस्कारों को न तोड़ा जाएगा नये प्रतिमानों का प्रस्तुत होना पर भावात्मिक मूल्यांकन में व परीक्षा रूप से दृष्टि दत्त रहने में। श्री कविरामायण न हि नयी आलोचना और रचनात्मक साहित्य (क.स.ग.—६ अक्टूबर १९६४) गीष्म निबन्ध में हम एक ही ओर संकेत करते हुए मनीषा का नि

प्राज्ञ भी नयी समीक्षा के सिद्धान्त पक्ष और व्यवहार पक्ष में यथेष्टता नहीं हुई है। अतिरिक्त समीक्षा के पीछे बिल्कुल व्यक्तिगत रुचि और कांक्षा नुसार रहता है—समीक्षा के सुनिश्चित मानदंडों को तो नहीं याद रखता। अपनी इस धारणा में श्री कविरामायण ने आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी की इस मायता का उद्धरण दिया है— गद्य और पद्य की भाषा पृथक् पृथक् न होना चाहिए। हिन्दी ही एक ऐसी भाषा है जिसके गद्य में एक प्रकार की और पद्य में दूसरे प्रकार की भाषा मिली जाती है। सम्यक् समाज की जो भाषा हो उसी भाषा में गद्य पद्य-आत्मक साहित्य होना चाहिए। इस उद्धरण के बाद श्री कविरामायण कहते हैं कि द्विवेदीजी का उद्धरण नया कविता की एक आधारभूत मायता को पुष्ट करता है लेकिन क्या द्विवेदीजी का वाक्य संस्कार आज की कविता को स्वीकार कर सका होता।

छायावादी कविता के बारे में द्विवेदीजी की राय की देखते हुए ही श्री कविरामायण ने बड़ाचिन्तन आगे बढ़ाया है— यद्यपि उसे निराधार कहना कठिन होगा। द्विवेदीजी के जिस कथन में श्री कविरामायण ने नयी कविता की एक आधारभूत मायता की पुष्टि देखी है उसमें सही सदाशिव की ओर ध्यान दिया जाता तो गायब वह ऐसी बात न पड़े कि 'तुम्हें यह तथ्य है कि कविता के वास्तविक मूल्यांकन में बौद्धिक स्तर पर स्वीकृत सिद्धांतों का अपना बलमत्त संस्कार अधिक निर्णायक भूमिका प्रदान करते हैं।

हम दृष्टि से आज नये में नये प्रतिमान के लिए सबसे बड़ी चुनौती छायावादी संस्कार है। उदाहरण के लिए गद्य और कविता का अंतर समझाने के लिए आज भी यथेष्ट रूप से यह कहा जाता है कि 'गुप्ता वृक्षस्तिष्ठत्यग्रं गच्छति' और नीरस तरुतिष्ठति विनमति पुरतः' काय है। इस मायता को बनामिकी मर्यादा प्रदान करने के लिए 'मम सायं वागमदृ' का नाम जोड़कर एक गद्यांश रामा विनमो भी गद्य दी गई है। यह अनुमति किन्तु पुराने संस्कारों के विनाश के लिए प्रचलन प्रायः उम्र समय हुआ जब कविता में छायावादी का बोधनाश था। आचार्य रामचंद्र शुक्ल का नयी कविता का

है निबन्ध में कविता की भाषागत विशेषता का निरूपण करते हुए इस उक्ति का प्रमाण के रूप में प्रस्तुत किया है। उक्ति में ही संस्कृत की हो कि तु इसमें कविता की एक हमानी धारणा निहित है इसकी ओर बढ़ता का ध्यान नहीं जाता।

इस ओर सम्भरत सबसे पहला कवि श्री सियारामगरण गुप्त की दृष्टि—१९२८ में जब छायावाद का युगांत घोषित हो चुका था और प्रगतिशील चेतना यथार्थता के रूप में उदित हो रही थी। श्री सियारामगरण गुप्त ने झूठ सच नामक पुस्तक में इस विषय पर गुप्तों वृक्ष नीचे निबन्ध लिखा जिसमें उन्होंने साहस के साथ यह प्रश्न उठाया कि गुप्तों वृक्षस्ति प्लत्यग्र कविता क्या नहीं है? उक्त ग्रन्थ में इस कठार में भी हाता है। मन कोमल पदाय सुस्वादु नहीं होता। इसी से गुप्तों वृक्षस्तिप्लत्यग्र में जो बात है वह भीरुस तर्करह आदि में नहीं। इसमें विलास की गंध है। इस वृक्ष के लिए विसृति पुरत कहना उसका उपहास है। अपनी इस धारणा की व्याख्या करते हुए आगे के कहते हैं अथवा वृक्ष ने उस सूक्ष्म वृक्ष को देखा था उसकी गुप्तता का अनुभव किया था। कल्पना लोक में वह भटका न था इसी से प्लतन धोड़े ग्रन्थों में उस वृक्ष का ऐसा विचित्र चित्र उससे बन पड़ा है। गुप्तों वृक्ष कहत ही आस्ता के आगे नीचे से ऊपर उठता हुआ एक ऐसा वृक्ष दिखाने लगता है जिसमें अब काई गांठ सी पड़ने वाली हो। कण्ठ को यहाँ जो भाव सम्भालना पड़ती है वह इस वृक्ष की ही है। इसका बाद निष्ठाति तक फिर उसके तने को ऊपर उठाने का मौका मिलता है। वृक्ष से तो केवल द्वित्व की ठोकर खाकर टप मरता होता हुआ वह फिर ऊपर ही ओर बढ़ जाता है। वाक्य का उच्चारण कर्त करत मानस पट पर अलक्षित रंगों में सूखे वृक्ष का एक ऐसा चित्र अंकित होता जाता है जिस एक बार प्रत्यक्ष दृष्टि से देख लेने पर भुलाया नहीं जा सकता। भाषा इसकी ऊबड़ खावड़ है। वह उचित ही है। अथ न समझने वालों का भी वह गुप्तता का वान करा देगी। उसका कारण वर्णित चित्र ऐसा हुआ गया है कि नीचे लिखा हुआ गद्य पढ़ना आवश्यक नहीं रहता चित्र का आगम्य अपने आप सुस्पष्ट हो जाता है।

इस विषय में आलोचना के मतिभ्रम पर टिप्पणी करते हुए श्री सियारामगरण गुप्त कहते हैं कि 'आश्चर्य का विषय है कि जो जानें इन लोगों (किसानों) की समस्या में भी आती है वह हमारे समाजोपकार की समस्या में नहीं आती। वे वास्तव में बटोर की उपधा करके कोमलता के उपवन में विचरण करने चल गए हैं। इस गुप्तों वृक्ष में भी जो आनंद है उसकी ओर उनकी दृष्टि नहीं गई।



बहुमूल छायावादी गहरार का यन्त्र उदात्तरण है जो भी गिरागम  
 गहरा गुप्त व उत्त खडन व वात् भी एतदम समाप्त नग हृष्टा है । कविता  
 की विविधता वतनात समय गत्र भी उस गद्य व विरुद्ध रखा जाता है प्र य  
 एमी उदात्तरण की सत्यता की जाती है जो एग स्थूल उदात्तरण का अपना  
 मूकम बुद्धि व विण अपमानजनक समझत हैं व भी गिरागम गिरागम रूप  
 म ऐसी भी उक्ति का सारा नग ह । गद्य का कविता व विरुद्ध रगन रा धर  
 ही है गद्य को मयाधवा रा प्रतीक मानना भार कविता का समादितता का ।

छायावादी मस्कार की हृत्ता का दूसरा उदात्तरण उदात्ता गम्भीर है ।  
 एतका प्रय आचार्य गमच गुक्त का है । सामान्यन आचार्य गुक्त छाया  
 व द व विराधी गमभ जान हैं किन्तु तथ्य है कि व स्मृतावात् न विराधा  
 न ध । का प्र म स्मृतावात् उहें अमाय या फिर भी व प्राकृतिक अग्रा  
 स्मृतावात् स्मृतावात् का कायन वे । कविता म अनुभूति को सर्वोपरि व  
 भी मानत है । कात्र भाषा की दृष्टि स छायावादी पत्रवली हा न । कवि पूरा  
 नापा ध्यनता प्रिय थी । एन मायतावा का अनुसार उदात्ता गिरा  
 कविता का ममूची परम्परा का मूल्यांकन किया जो आग चलकर गिरा  
 साहित्य का अनिमम म रूप म गिरा व विद्याधिया का मस्कार बन गया ।  
 भी योग आचार्य गुक्त व स्मृता मानदण न पूरा तरह अभिन न ही है व भा  
 उम मानदण व प्रावहारिक मूल्यांकन व प्रभाव म है जिसका स्मृता प्रमाण  
 य है गिराज तक हि । कविता का परम्परा का पुनम याकनन की किया गया ।  
 आचार्य गुक्त व मूल्यांकन म छायावादी आग्रह जिस सीमा तक अतन्त्रित है  
 एने छायावाद म स्मृता कविता व मूल्यांकन म माफ दया जा सकता है । जो  
 धनान प्रसा व प्रिय कवि व उह गुक्तजी न भी साक्षात् सममूति  
 कहा और ना गिरा मूतिमत्ता और प्रयोग कवि व व कारण उह छाया  
 वादी कविता स सबद्ध कर लिया । एमक विपरीत कगदाम का धार म उदात्ता  
 स्मृता निणय दिया कि कगव को कवि हृत्ता न । गिरा वा । उनम य  
 महद्वता और भावता न थी जो एक कवि मानी चाहिए । एम मुह  
 यता और भावता का वास्तविक अर्थ जानन व गिरा कगव व धार म  
 रा म० की वास्तविक का कगव की कविता कीपर मत्रा स्मृता प्र है  
 जिस कगव को गद्य का मक कवि माना गया है । वास्तविक न कगव की  
 तुना अग्रश कवि वन जानमन म कन हृत्ता का है कि कही कगवा रा  
 चमकार को काइ नाराय वरना है और का नि ग वही भी धमन म कगव  
 धारा ना अग्र जहर वरन है हाय । जम—

एग गारा नारी तरा थारी वाग हान मने

मोहन का माहिनी का गिरा की गुगन है ।